R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-22, अङ्क-5 मई 2022 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर मुनिराज - आदिनाथ को प्रथम बार राजा श्रेयांस के द्वारा इक्षुरस का आहारदान

मुनिवर आज मेरी कुटिया में आये हैं.....

उपकार दिवस पर समर्पित...

जिन मार्ग के सत प्रभावक,
पाखंड का खंडन अटल।
अध्यात्म शून्य समाज में,
जग गया सम्यक दृग पटल।।

विस्फोट आतम क्रांति का
अध्यात्म का आया जभी।
निजसौख्य की उस भ्रांति का
ढह गया शून्य क्षितिज तभी।

अध्यात्म धान की खान, पड़ी सुनसान,
कोई नहीं जान, कहान गुरु आये,
सूनी भूमि पर ज्ञान मेघ बरसाये।।

बदली दिशा सब मार्ग बदले
आत्म का पौरुष जगा।
जागी किरण सम्यक्त्व की
मिथ्यात्व फिर झट से भगा।।

प्रभु वीर से सिञ्चित हुआ
सुख मार्ग उदघाटित किया।
भटके हुए सत सूर्य को
अध्यात्म का इक रुख दिया।।

जिनधर्म का था जो मूल, गए सब भूल,
क्रिया में फूल, जगत भरमाया,
तब आपही ने अध्यात्म सूर्य चमकाया।।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-22, अङ्क-5 (वी.नि.सं. 2548; वि.सं. 2079) मई 2022

आनन्द अवसर आयो...

(अक्षय तृतीया)

आनन्द अवसर आयो, मुनिवर दर्शन पायो,
परम दिगम्बर सन्त पधारे, जीवन धन्य बनायो-बनायो ।टेक ॥

पुण्य उदय है आज हमारे, आदिश्वर मुनिराज पधारे;
श्री मुनिवर के दर्शन करके, शुद्ध हुए हैं भाव हमारे ।
जीवन सफल बनायो... बनायो ॥1 ॥

श्रेयांश राजा हर्षित भारी, आहार दान की है तैयारी;
निराहार चेतन राजा के, अनुभव से है आनन्द भारी ।
मुनिवर को पड़गाह्यो... पड़गाह्यो ॥2 ॥

हे स्वामी तुम यहाँ विराजो, उच्चासन पर आप विराजो;
मन-वच-तन आहारशुद्ध है, भाव हमारे अति विशुद्ध हैं ।
अपने चरण बढ़ाओ... बढ़ाओ ॥3 ॥

दोष छियालिस मुनिवर टालें, अन्तराय बत्तीसों टालें;
दोषरहित निज के अनुभव से, चतुरगति का भ्रमण निवारें ।
तप को निमित्त बनायो... बनायो ॥4 ॥

मुनिवर अब आहार करेंगे, निज चैतन्य विहार करेंगे;
क्षायिक श्रेणी आरोहण कर, मुक्तिपुरी का राज वरेंगे ।
निज में निज को रमायो...रमायो ॥5 ॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्रीमती प्रज्ञा जैन,
कल्याणी जैन,
हस्ते श्री अजित जैन,
बड़ोदरा (गुजरात)।

क्या - कहाँ

आहारदान का वर्णन 5
श्री समयसार नाटक 12
ज्ञानतत्त्व में पर का अकर्तृत्व 20
मंगल-प्रवचन 22
श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान 26
समाचार-दर्शन 30

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

आहारदान का वर्णन

चैतन्य की मस्ती में मस्त मुनि को देखते हुए गृहस्थ को ऐसा भाव आता है कि अहा, रत्नत्रय साधनावाले सन्त को शरीर की अनुकूलता रहे, ऐसा आहार, औषध देऊँ, जिससे वह रत्नत्रय को निर्विघ्न साधे! इसमें मोक्षमार्ग का बहुमान है कि अहो! धन्य ये सन्त और धन्य आज का दिन कि मेरे आँगन में, मोक्षमार्गी मुनिराज के चरण पड़े... आज तो मेरे आँगन में मोक्षमार्ग साक्षात् आया... वाह! धन्य ऐसे मोक्षमार्गी मुनि को देखते ही श्रावक का हृदय बहुमान से उछल जाता है। जिसे धर्मी के प्रति भक्ति नहीं, आदर नहीं, उसे धर्म का प्रेम नहीं।

धर्मी श्रावक को आहारदान के कैसे भाव होते हैं, वह यहाँ बतलाते हैं—

सर्वो वाञ्छति सौख्यमेव तनुभृत् तन्मोक्ष एव स्फुटं
दृष्ट्यादित्रय एव सिध्यति स तन्निर्ग्रन्थ एव स्थितम्।
तद्धृतिर्वपुषोऽस्य वृत्तिरशनात् तद्दीयते श्रावकैः
काले क्लिष्टतेऽपि मोक्षपदवी प्रायस्ततो वर्तते॥८॥

सर्व जीव सुख चाहते है; वह सुख प्रगटरूप से मोक्ष में है; उस मोक्ष की सिद्धि सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय द्वारा होती है; रत्नत्रय निर्ग्रन्थ-दिगम्बर साधु को होता है; साधु की स्थिति शरीर के निमित्त से होती है, और शरीर की स्थिति भोजन के निमित्त से होती है; और भोजन श्रावकों द्वारा देने में आता है। इस प्रकार इस अतिशय क्लिष्ट काल में भी मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति 'प्राय:' श्रावकों के निमित्त से हो रही है।

व्यवहार का कथन है इसलिए प्राय: शब्द रखा है; निश्चय से तो आत्मा के शुद्धभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग टिका हुआ है, और उस भूमिका में यथाजातरूपधर निर्ग्रन्थ शरीर, आहार आदि बाह्य निमित्त होते हैं अर्थात् दान के उपदेश में प्राय: इसके द्वारा ही मोक्षमार्ग प्रवर्तता है—ऐसा निमित्त से

कहा जाता है। वास्तव में कोई आहार या शरीर से मोक्षमार्ग टिकता है—ऐसा नहीं बताना है। अरे, मोक्षमार्ग के टिकने में जहाँ महाव्रत के आदि के शुभराग का सहारा नहीं, वहाँ शरीर और आहार की क्या बात ? इसके आधार से मोक्षमार्ग कहना, वह सब निमित्त का कथन है। यहाँ तो आहारदान देने में धर्मी जीव—श्रावक का ध्येय कहाँ है ? यह बतलाना है। दान आदि के शुभभाव के समय ही धर्मी गृहस्थ को अन्तर में मोक्षमार्ग का बहुमान है; पुण्य का बहुमान नहीं, बाह्यक्रिया का कर्तव्य नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का ही बहुमान है कि अहो, धन्य ये सन्त ! धन्य आज का दिन कि मेरे आँगन में मोक्षमार्गी मुनिराज पधारे ! आज तो जीता-जागता मोक्षमार्ग मेरे आँगन में आया। अहो, धन्य यह मोक्षमार्ग ! ऐसे मोक्षमार्गी मुनि को देखते ही श्रावक का हृदय बहुमान से उछल उठता है, मुनि के प्रति उसे अत्यन्त भक्ति और प्रमोद उत्पन्न होता है। 'साचुंरे सगपण साधर्मीतणुं' —अन्य लौकिक सम्बन्ध की अपेक्षा उसे धर्मात्मा के प्रति विशेष उल्लास आता है। मोही जीव को स्त्री-पुत्र-भाई-बहिन आदि के प्रति प्रेमरूप भक्ति आती है, वह तो पापभक्ति है, धर्मी जीव को देव-गुरु-धर्मात्मा के प्रति परम प्रीतिरूप भक्ति उछल उठती है, वह पुण्य का कारण है और उसमें वीतरागविज्ञानमय धर्म के प्रेम का पोषण होता है। जिसे धर्मी के प्रति भक्ति नहीं, उसे धर्म के प्रति भी भक्ति नहीं, क्योंकि धर्मी के बिना धर्म नहीं होता। जिसे धर्म का प्रेम हो उसे धर्मात्मा के प्रति उल्लास आये बिना नहीं रहता।

सीताजी के विरह में रामचन्द्रजी की चेष्टा साधारण लोगों को तो पागल जैसी लगे, परन्तु उनका अन्तरंग कुछ भिन्न ही था। अहो, सीता मेरी सहधर्मिणी ! उसके हृदय में धर्म का वास है, उसे आत्मज्ञान वर्त रहा है; वह कहाँ होगी ? इस जंगल में उसका क्या हुआ होगा ? इस प्रकार साधर्मीपने के कारण रामचन्द्रजी को सीता के हरण से विशेष दुःख आया था। अरे, यह धर्मात्मा देव-गुरु की परम भक्त, इससे मेरा वियोग हुआ, मुझे ऐसी धर्मात्मा-

साधर्मी का बिछोह हुआ,—ऐसे धर्म की प्रधानता का विरह है। परन्तु ज्ञानी के हृदय को संयोग की ओर से देखनेवाले मूढ़ जीव परख नहीं सकते।

धर्मी—श्रावक, अन्य धर्मात्मा को देखकर आनन्दित होते हैं और बहुमान से आहारदान है, वे चैतन्यसाधना में लीन हैं; और जब कभी देह की स्थिरता के लिये आहार की वृत्ति उठती है तब आहार के लिये नगरी में पधारते हैं। ऐसे मुनि को देखते गृहस्थ को ऐसे भाव आते हैं कि अहो! रत्नत्रय को साधनेवाले इन मुनि को शरीर की अनुकूलता रहे ऐसा आहार-औषध देऊँ जिससे ये रत्नत्रय को निर्विघ्न साधें। इस प्रकार व्यवहार से शरीर को धर्म का साधन कहा है और उस शरीर का निमित्त अन्न हैं; अर्थात् वास्तव में तो आहारदान देने के पीछे गृहस्थ की भावना परम्परा से रत्नत्रय के पोषण की ही है; इसका लक्ष्य रत्नत्रय पर है। और उस भक्ति के साथ उपजे आत्मा में रत्नत्रय की भावना पुष्ट करता है। श्री रामचन्द्रजी और सीताजी जैसे भी परमभक्ति से मुनियों को आहार देते थे।

मुनियों के आहार की विशेष विधि है। मुनि जहाँ-तहाँ आहार नहीं करते। वे जैनधर्म की श्रद्धावाले श्रावक के यहाँ ही नवधाभक्ति आदि विधिपूर्वक आहार करते हैं। श्रावक के यहाँ भी बुलाये बिना (- भक्ति से पडगाहन—निमंत्रण किये बिना) मुनि आहार के लिये नहीं पधारते। और पीछे श्रावक अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक नौ प्रकार की भक्ति पूर्वक निर्दोष आहार मुनि के हाथ में देते हैं। (1. प्रतिग्रहण अर्थात् आदरपूर्वक निमंत्रण, 2. उच्च आसन, 3. पाद-प्रक्षालन, 4. पूजन-स्तुति, 5. प्रणाम, 6. मनशुद्धि, 7. वचनशुद्धि, 8. कायशुद्धि और 9. आहारशुद्धि—ऐसी नवधाभक्तिपूर्वक श्रावक आहारदान दे।) जिस दिन मुनि के आहारदान का प्रसंग अपने आँगन में हो उस दिन उस श्रावक के आनन्द का पार नहीं होता। श्रीराम और सीता जैसे भी जंगल में मुनि को भक्ति से आहारदान देते हैं, उस समय एक गृद्धपक्षी (-जटायु) भी उसे देखकर उसकी अनुमोदना करता है और उसे

जातिस्मरण ज्ञान होता है। राजा श्रेयांस ने जब ऋषभमुनि को प्रथम आहारदान दिया, तब भरत चक्रवर्ती उसे धन्यवाद देने उसके घर गये थे। यहाँ मुनि की उत्कृष्ट बात ली, उसी प्रकार अन्य साधर्मी श्रावक धर्मात्मा के प्रति भी आहारदान आदि का भाव धर्मी को होता है। ऐसे शुभभाव श्रावक की भूमिका में होते हैं, इसलिए उसे श्रावक का धर्म कहा है; तो भी उसकी मर्यादा कितनी ?—कि पुण्यबन्ध हो इतनी; इससे अधिक नहीं। दान की महिमा का वर्णन करते हुए उपचार से ऐसा भी कहा है कि मुनि को आहारदान, श्रावक को मोक्ष का कारण है—वहाँ वास्तव में तो श्रावक को उस समय में जो पूर्णता के लक्ष्य से सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान वर्तता है, वही मोक्ष का कारण है, राग कहीं मोक्ष का कारण नहीं—ऐसा समझना।

- सब जीवों को सुख चाहिए।
- पूर्ण सुख मोक्षदशा में है।
- मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।
- यह रत्नत्रय निर्ग्रन्थ मुनि को होता है।
- मुनि का शरीर आहारादि के निमित्त से टिकता है।
- आहार का निमित्त गृहस्थ-श्रावक है।
- इसलिए परम्परा से गृहस्थदशा मोक्षमार्ग का कारण है।

जिस श्रावक ने मुनि को भक्ति से आहारदान दिया, उसने मोक्षमार्ग टिकाया, ऐसी परम्परा निमित्त अपेक्षा से कहा है। परन्तु इसमें आहार लेनेवाला और देनेवाला दोनों सम्यग्दर्शन सहित हैं, दोनों को राग का निषेध और पूर्ण विज्ञानघनस्वभाव का आदर वर्तता है। आहारदान देनेवाले को भी सत्पात्र और कुपात्र का विवेक है। चाहे जैसे मिथ्यादृष्टि अन्य लिंगी को गुरु मानकर आदर करे, उसमें तो मिथ्यात्व की पुष्टि होती है।

धर्मी श्रावक को तो मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति का प्रेम है। सुख तो मोक्षदशा में है, ऐसा उसने जाना है, अर्थात् उसे कहीं सुखबुद्धि नहीं है। रत्नत्रयधारी

दिगम्बर मुनि ऐसे मोक्षसुख को साध रहे हैं, इससे मोक्षाभिलाषी जीव को ऐसे मोक्षसाधक मुनि के प्रति परम उल्लास, भक्ति और अनुमोदना आती है; वहाँ आहारदान आदि के प्रसंग सहज ही बन जाते हैं।

देखो, यहाँ तो श्रावक ऐसा है कि जिसे मोक्षदशा में ही सुख भासित हुआ है, संसार में अर्थात् पुण्य में—राग में—संयोग में कहीं सुख नहीं भासता। जिसे पुण्य में मिठास लगे, राग में सुख लगे, उसे मोक्ष के अतीन्द्रियसुख की प्रतीति नहीं, और मोक्षमार्गी मुनिवर के प्रति उसे सच्ची भक्ति उल्लसित नहीं होती। मोक्षसुख तो रागसहित है, उसे पहचाने बिना राग को सुख का कारण माने, उसे मोक्ष की अथवा मोक्षमार्गी सन्तों की पहचान नहीं। और पहचान बिना की भक्ति को सच्ची भक्ति नहीं कहते हैं।

मुनि को आहार देनेवाले श्रावक का लक्ष्य मोक्षमार्ग पर है कि अहो! ये धर्मात्मा मुनिराज मोक्षमार्ग को साध रहे हैं। वह मोक्षमार्ग के बहुमान से और उसकी पुष्टि की भावना से आहारदान देता है, इससे उसे मोक्षमार्ग टिकाने की भावना है और अपने में भी वैसा ही मोक्षमार्ग प्रगट करने की भावना है, इसलिए कहा है कि आहारदान देनेवाले श्रावक द्वारा मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति होती है। जैसे बहुत बार संघ जिमानेवाले को ऐसी भावना होती है, कि इसमें कोई बाकी नहीं रहना चाहिए; क्योंकि इसमें कदाचित् कोई जीव तीर्थंकर होनेवाला हो तो? इस प्रकार जिमाने में उसे अव्यक्तरूप से तीर्थंकर आदि के बहुमान का भाव है। उसी प्रकार यहाँ मुनि को आहार देनेवाले श्रावक की दृष्टि मोक्षमार्ग पर है, आहार देऊँ और पुण्य बँधे—इस पर उसका लक्ष्य नहीं है। इसका एक दृष्टांत आता है कि किसी ने भक्ति से एक मुनिराज को आहारदान दिया और उसके आँगन में रत्नवृष्टि हुई, दूसरा कोई लोभ मनुष्य ऐसा विचारने लगा कि मैं भी इन मुनिराज को आहारदान दूँ, जिससे मेरे घर रत्नों की वृष्टि होगी।—देखो, इस भावना में तो लोभ का पोषण है। श्रावक को ऐसी भावना नहीं होती; श्रावक को तो मोक्षमार्ग के पोषण की भावना है कि अहो! चैतन्य के अनुभव से जैसा मोक्षमार्ग मुनिराज

साध रहे हैं, वैसा मोक्षमार्ग मैं भी साधूँ—ऐसी मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति की भावना उसे वर्तती है। इसलिए इस क्लिष्ट काल में भी प्राय: ऐसे श्रावकों द्वारा मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति है—ऐसा कहा जाता है।

अन्दर में शुद्धदृष्टि तो है, राग से पृथक् चैतन्य का वेदन हुआ है, वहाँ श्रावक को ऐसा शुभभाव आये, उसके फल से वह मोक्षफल को साधता है, ऐसा भी उपचार से कहा जाता है, परन्तु वास्तव में उस समय अन्तर में जो राग से परे दृष्टि पड़ी है, वही मोक्ष को साध रही है। (प्रवचनसार गाथा 254 में भी इस अपेक्षा बात की है।) अन्तर्दृष्टि को समझे बिना मात्र राग से वास्तविक मोक्ष प्राप्ति मान ले तो उसे शास्त्र के अर्थ की अथवा सन्तों के हृदय की खबर नहीं है; मोक्षमार्ग का स्वरूप वह नहीं जानता। यह अधिकार ही व्यवहार की मुख्यता से है; इसलिए इसमें तो व्यवहार कथन होगा; अन्तर्दृष्टि को परमार्थ लक्ष्य में रखकर समझना चाहिए।

एक ओर जोरशोर से भार देकर ऐसा कहा जाता है कि भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही धर्म होता है, और यहाँ कहा कि आहार या शरीर के निमित्त से धर्म टिकता है—तो भी उसमें कोई परस्पर विरोध नहीं है, क्योंकि पहला परमार्थ कथन है और दूसरा उपचार कथन है। मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति प्राय: गृहस्थ द्वारा दिए हुए दान से चलती है, इसमें 'प्राय:' शब्द यह सूचित करता है, कि यह नियमरूप नहीं है, जहाँ शुद्धात्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग टिके वहाँ आहारादि को निमित्त कहा जाता है—अर्थात् यह तो उपचार ही हुआ। शुद्धात्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग टिकता है—यह नियमरूप सिद्धान्त है, इसके बिना मोक्षमार्ग हो नहीं सकता।

सुख अर्थात् मोक्ष; आत्मा की मोक्षदशा ही सुख है, इसके अलावा मकान में, पैसे मे, राग में—कहीं सुख नहीं है, धर्मी को आत्मा सिवाय कहीं सुखबुद्धि नहीं है। चैतन्य के बाहर किसी प्रवृत्ति में कहीं सुख है ही नहीं। आत्मा के मुक्तस्वभाव के अनुभव में सुख है। सम्यग्दृष्टि ने ऐसी आत्मा का निश्चय किया है, उसके सुख का स्वाद चखा है। और जो उग्र अनुभव द्वारा

मोक्ष को साक्षात् साध रहे हैं, ऐसे मुनि के प्रति अत्यन्त उल्लास से और भक्ति से वह आहारदान देता है।

आनन्दस्वरूप आत्मा में श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरता मोक्ष का कारण है और बीच के व्रतादि शुभ-परिणाम पुण्यबन्ध के कारण हैं। आत्मा के आनन्दसागर को उछालकर उसमें जो मग्न हैं, ऐसे नग्नमुनि रत्नत्रय को साध रहे हैं, उसके निमित्तरूप देह है और देह के टिकने का कारण आहार है; इसलिए जिसने भक्ति से मुनि को आहार दिया, उसने मोक्षमार्ग दिया अर्थात् उसके भाव में मोक्षमार्ग टिकने का आदर हुआ। इस प्रकार भक्ति से आहारदान देनेवाला श्रावक इस दुषमकाल में मोक्षमार्ग की प्रवत्ति का कारण है। धर्मात्मा-श्रावक ऐसा समझकर मुनि आदि सत्पात्र को रोज भक्ति से दान देता है। अहो, मेरे घर कोई धर्मात्मा सन्त पधारे, ज्ञान-आनन्द का भोजन करनेवाले कोई सन्त मेरे घर पधारें, तो भक्ति से उन्हें भोजन दूँ—ऐसा भाव गृहस्थ-श्रावक को रोज-रोज आता है। ऋषभदेव के जीव ने पूर्व के आठवें भव में मुनिवरों को परम-भक्ति से आहार दिया था, और तिर्यंचों ने भी उसका अनुमोदन करके उत्तम फल प्राप्त किया था, यह बात पुराणों में प्रसिद्ध है। राजा श्रेयांसकुमार ने आदिनाथ मुनिराज को आहारदान दिया था।—ये सब प्रसंग प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार चार प्रकार के दान में से आहारदान की चर्चा की।●●

मुनियों की वैय्यावृत्ति का फल

उच्चैर्गोत्रं प्रणते भोगो दानादुपासनात् पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात् कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥1॥

अर्थात् परम वीतराग जिनेन्द्र के मार्गरत मुनि को प्रणाम करने से उच्च गोत्र बँधता है और उनको शुद्ध निर्दोष आहार देने से उत्तम भोगभूमि तथा देवगति के सुख एवं चक्रवर्तीपद की प्राप्ति होती है।

- संयम प्रकाश, पृष्ठ 600

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

प्रथम अधिकार का सार

आत्मपदार्थ शुद्ध, बुद्ध, निर्विकल्प, देहातीत, चिच्चमत्कार, विज्ञान-धन, आनंदकंद, परमदेव, सिद्ध सदृश है। जैसा वह अनादि है वैसा अनंत भी है अर्थात् न कभी उत्पत्र हुआ है और न कभी नष्ट ही होगा। यद्यपि वह अपने स्वरूप से स्वच्छ है परन्तु संसारी दशा में जब से वह है तभी से अर्थात् अनादिकाल से शरीर से संबद्ध और कर्मकालिमा से मलिन है। जिस प्रकार कि सोना धाऊ की दशा में कर्दम सहित रहता है परन्तु भट्टी में पकाने से शुद्ध सोना अलग हो जाता है और किट्टिमा पृथक् हो जाती है उसीप्रकार सम्यक्तप मुख्यतया शुक्लध्यान की अग्नि के द्वारा जीवात्मा शुद्ध हो जाता है और कर्मकालिमा पृथक् हो जाती है। जिस प्रकार जौहरी लोग कर्दम मिले हुए सोने को परखकर सोने के दाम देते-लेते हैं उसी प्रकार ज्ञानी लोग अनित्य और मलभरे शरीर में पूर्णज्ञान और पूर्ण आनंदमय परमात्मा का अनुभव करते हैं।

जब कपड़े पर मेल जम जाता है तब मलिन कहाता है, लोग उससे ग्लानि करते हैं और निरुपयोगी बतलाते हैं, परन्तु विवेकदृष्टि से विचारा जावे तो कपड़ा अपने स्वरूप से स्वच्छ है साबुन पानी का निमित्त चाहिये। बस! मेल सहित वस्त्र के समान कर्दम सहित आत्मा को मलिन कहना व्यवहारनय का विषय है, और मेल से निराले स्वच्छ वस्त्र के समान आत्मा को कर्मकालिमा से जुदा ही गिनना निश्चयनय का विषय है। अभिप्राय यह है कि, जीव पर, वास्तव में कर्मकालिमा लगती नहीं है कपड़े के मेल के समान वह शरीर आदि से बँधा हुआ है, भेदविज्ञानरूप साबुन और समतारसरूप जल द्वारा वह स्वच्छ हो सकता है। तात्पर्य यह कि जीव को देह से भिन्न शुद्ध बुद्ध जाननेवाला निश्चयनय है और शरीर से तन्मय, राग-द्वेष-मोह से मलिन कर्म के आधीन करनेवाला व्यवहारनय है। सो

प्रथम अवस्था में इस नयज्ञान के द्वारा जीव की शुद्ध और अशुद्ध परिणति को समझकर अपने शुद्ध स्वरूप में लीन होना चाहिये इसीका नाम अनुभव है। अनुभव प्राप्त होने के अनंतर फिर नयों का विकल्प भी नहीं रहता इसलिये कहना होगा कि नय प्रथम अवस्था में साधक हैं और आत्मा का स्वरूप समझे पीछे नयों का काम नहीं है।

गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं, जीव के गुण चैतन्य, ज्ञान, दर्शन, आदि हैं। द्रव्य की हालत को पर्याय कहते हैं, जीव की पर्यायें नर, नारक, देव, पशु, आदि हैं। गुण और पर्यायों के बिना द्रव्य नहीं होता और गुण-पर्याय बिना द्रव्य के नहीं होते, इसलिये द्रव्य और गुण-पर्यायों में अव्यतिरिक्त भाव है। जब पर्याय को गौण और द्रव्य को मुख्य करके कथन किया जाता है तब नय द्रव्यार्थिक कहलाता है और जब पर्याय को मुख्य तथा द्रव्य को गौण करके कथन किया जाता है तब नय पर्यायार्थिक कहलाता है। द्रव्य सामान्य होता है और पर्याय विशेष होता है, इसलिये द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय के विषय में सामान्य-विशेष का अन्तर रहता है। जीव का स्वरूप निश्चयनय से ऐसा है, व्यवहारनय से ऐसा है, द्रव्यार्थिकनय से ऐसा है, पर्यायार्थिकनय से ऐसा हैं, अथवा नयों के भेद शुद्ध निश्चयनय, अशुद्ध निश्चयनय, सद्भूत व्यवहारनय, असद्भूत व्यवहारनय, उपचरित व्यवहारनय इत्यादि विकल्प चित्त में अनेक तरंगें उत्पन्न करते हैं, इससे चित्त को विश्राम नहीं मिल सकता, इसलिये कहना होगा कि नय के कल्लोल अनुभव में बाधक हैं परन्तु पदार्थ का यथार्थ स्वरूप जानने और स्वभाव-विभाव के परखने में सहायक अवश्य हैं। इसलिये नय, निक्षेप और प्रमाण से अथवा जैसे बने तैसे आत्मस्वरूप की पहिचान करके सदैव उसके विचार तथा चिंतवन में लगे रहना चाहिये।

प्रथम अधिकार के सार पर प्रवचन

आत्मपदार्थ शुद्ध-बुद्ध-निर्विकल्प, देहातीत चित्चमत्कार, विज्ञानघन, आनंदकंद, परमदेव सिद्धसमान है। आत्मा पुण्य-पाप के

विकल्प से रहित 'शुद्ध' है। आत्मा ज्ञान का समुद्र है, अतः 'बुद्ध' है। श्रीमद्जी कहते हैं न–

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम।
दूजा कहना कीतना, कर विचार तो पाम।।

भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य है, निर्विकल्प अर्थात् अभेद है अखण्ड आनन्दमूर्ति है। आत्मा देह से रहित–देहातीत है। एकसमय में तीन काल–तीन लोक को जाने ऐसा चित् चमत्कार स्वरूप है। कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि इस लकड़ी में कुछ जादू है, जो महाराज (कानजीस्वामी) के पास जाता है वह पैसेवाला हो जाता है; अतः कुछ चमत्कार है..भाई! यह चमत्कार नहीं, यहाँ तो आत्मा स्वयं चमत्कारिक वस्तु है, एक समय में सबको जाने; परन्तु कहीं राग या द्वेष नहीं होते –यह चमत्कार है।

आत्मा 'विज्ञानघन' है, क्योंकि आत्मा ज्ञान का घन है। इससे उसमें देह, मन, वाणी, कर्म अथवा रागादि किसी का प्रवेश नहीं हो सकता है। जब राग आत्मा का स्पर्श भी नहीं करता तो राग से धर्म होवे –यह बात ही कहाँ रही ?

आत्मा 'आनन्दकंद' है। जैसे शक्करकंद मिठास का पिण्ड है, उसीप्रकार आत्मा आनन्द का पिण्ड है। आत्मा ज्ञान का तो पिण्ड है; अतीन्द्रिय आनन्द का भी पिण्ड है। उसमें पुण्य–पाप के विकल्प का प्रवेश नहीं है। ऐसा आत्मा जिसको सुनने में भी नहीं आया वह कब सुने, कब समझे और कब उसमें स्थिर हो!

आत्मा 'परमदेव' है। दिव्य शक्तियाँ अनन्तज्ञान, अनन्त आनन्द, आनन्द शान्ति आदि दिव्यशक्तियों का धारक देव है। अरे! देव नहीं, परमदेव है ऐसा कहते हैं। आत्मा सिद्ध समान है। णमोकार मंत्र के अन्तिम पद में 'णमो लोए सव्व' पद आता है, वह पद पाँचों में ही लागू पड़ता है। इसलिए 'णमो लोए सव्व सिद्धाणं' में समस्त सिद्धों को आदर्शरूप में रखा। सिद्ध में जो कुछ है, वह सब मेरे में है और सिद्ध में जो नहीं है, वह मेरे में नहीं है ऐसा समझ ले; क्योंकि तू सिद्धसमान है।

अन्तरदृष्टि द्वारा ऐसे सिद्धसमान आत्मा को समझना, भेदज्ञान करना और अनुभव करने का नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

यह आत्मा जैसा है, वैसा अन्तर में अनुभव होने का नाम सम्यग्दर्शन है। आत्मपदार्थ त्रिकाल शुद्ध है। पर्याय में अशुद्धता है, वह आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है।

आत्मा शुद्ध है और आत्मा बुद्ध है अर्थात् ज्ञान का सूर्य है चैतन्यपुंज है। जब ऐसा आत्मा नजर में आता है, तब आत्मा को जानना कहलाता है। आत्मा जानने में आवे, वैसा ही है; क्योंकि इसका स्वरूप 'प्रत्यक्षज्ञाता' है। जिसमें शरीर नहीं, मन नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प नहीं ऐसा ज्ञानसागर आत्मा बुद्ध है। पुण्य-पाप के राग के पीछे जो चैतन्यसूर्य रहा हुआ है, वह आत्मा है।

यह आत्मा विकल्परहित निर्विकल्प है, इसमें अनन्तगुण के भेद नहीं ऐसा यह अभेद है। गुण-गुणी का भेद है, वह व्यवहारनय का विषय है, परन्तु वह अभूतार्थ है-सत्यार्थ नहीं। जैसे भेद है, वह जीवस्वरूप नहीं है, उसी प्रकार एक समय की पर्याय भी जीवस्वरूप नहीं है। एक समय का व्यवहार है, वह त्रिकाल की अपेक्षा झूठा है।

जैसे निर्मलता रे स्फटिक की, त्यौं ही जीव स्वभाव..स्फटिकमणि एकदम निर्मल होती है; परन्तु वह जड़ है और आत्मा तो निर्मल चैतन्य है तो भी स्वयं रंक होकर रुलता है -पामर होकर परिभ्रमण करता है, परन्तु इसको अपनी निर्मलता का विश्वास नहीं है।

श्री जिनवीर ने रे धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव रे...सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा श्री वीर जिन ने कहा है कि प्रभु! तेरा स्वरूप तो अभेद देह से रहित है। उसकी दृष्टि कर तो तुझको सम्यग्दर्शन होगा। पर की अपेक्षा रखकर सम्यग्दर्शन करना चाहेगा तो नहीं होगा। भगवान! तू पंगु नहीं है कि तुझे लकड़ी के आधार से चलना पड़े और विकल्प-व्यवहार के आधार से तेरा भान हो ऐसा तू नहीं है।

जिनेन्द्र देव कहते हैं ऐसा आत्मा स्वयं स्वरूप से जिनेन्द्रदेव है। आत्मा देहातीत है, शरीर के रजकणों से अत्यन्त भिन्न है, पुद्गल के रजकणों से निर्मित शरीर यह कोई तेरी वस्तु नहीं है। तू तो चित्चमत्कार है। अपने में रहकर सम्पूर्ण जगत को क्षण में जान लेने की तुझमें सामर्थ्य है।

भगवान आत्मा विज्ञानघन है। जैसे पुराने जमाने में देशी घी ऐसा होता था कि सर्दी में उसमें अंगुली तो प्रवेश नहीं कर सकती, पर चम्मच डाले तो वह भी मुड़ जाती थी –ऐसा घन घी होता था। उसीप्रकार यह आत्मा ऐसा ज्ञान का घन है कि इसमें पुण्य पाप के विकल्प भी प्रवेश नहीं कर सकते। शरीर और कर्म का तो आत्मा में प्रवेश है ही नहीं; परन्तु जिससे तीर्थंकर नामकर्म बँधता है, उस भाव का भी आत्मा में प्रवेश नहीं है, आत्मा ऐसा विज्ञानघन है, उसको जानना पड़ेगा।

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कंद है। उस अतीन्द्रिय आनन्द को पीते पार आवे ऐसा नहीं है। अज्ञानी बाहर में सुख के लिए झपट्टे मार रहा है। पैसे में से, स्त्री में से, इज्जत–प्रतिष्ठा में से सुख लेना चाहता है–वहाँ आनन्द लेने निकला है; परन्तु तू भूल गया है भाई! जहाँ आनन्द है ही नहीं वहाँ से आनन्द किसप्रकार मिलेगा ?तू अपने में देख न! तू तो आनन्द का कंद है।

आत्मा परमदेव है। जिसकी एक–एक शक्ति दिव्य है, ऐसी अनन्त ञाक्तियों का स्वामी वह आत्मा परमदेव है। उसकी उपासना कर! तू तो देव का देव है। जहाँ वीतराग देव को मानना, यह भी विकल्प है, वहाँ लोग पद्मावती आदि देवियों को मानते हैं –यह जैन का लक्षण नहीं है, यह तो गृहीत मिथ्यात्व का लक्षण है। बहुत से लोग अम्बाजी को मानते हैं –यह भी जैन का लक्षण नहीं है। भाई, तू तो देव का देव है तो अन्य देव तो तेरे सिर पर हो ही नहीं सकते। तू तो अनन्त चैतन्य चमत्कारी शक्तियों का स्वामी है। जिसमें स्वभाव से ही अनन्त शक्तियाँ विद्यमान हैं, उसका क्या कहना ?जिसकी एक शक्ति की बेहदता..अनन्तता..दिव्यता का पार नहीं, उसका स्वामी ऐसा आत्मा परमदेव है। उसका अनुभव करना सम्यग्दर्शन है।

आत्मा सिद्धसमान है। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' –अनादि से जीव का स्वरूप सिद्धसमान अनन्त अनन्त महिमावंत है परन्तु इसकी नजर में आया नहीं है; किन्तु नजर में नहीं आने से कोई वस्तु का स्वरूप हो, वह मिट नहीं जाता। भगवान ने जीव का स्वरूप ऐसा देखा है और जैसा देखा है, वैसा कहा है।

प्रभु! तू अविनाशी भगवान है। अनादि से है और अनन्तकाल तक ऐसा ही रहनेवाला है; परन्तु तुझको अपने घर के वैभव का पता नहीं है। तेरे घर में अनन्त चैतन्य रत्न भरे हैं। सर्वज्ञ परमेश्वरदेव कहते हैं कि भाई! तू ऐसे स्वरूप से स्वच्छ है, अनन्त महिमावंत है; परन्तु तुझे तेरी खबर नहीं। जहाँ तुझे जाना है, वहाँ तो तू जाता नहीं और दया, दान व्रत, तप आदि के विकल्प मेरे हैं, मुझे हितकारी हैं ऐसा मानकर रुक रहा है। स्वयं अपने को एक समय की दशा जितना मानता है, उसमें सम्पूर्ण वस्तु का अनुभव रह जाता है।

आत्मा वस्तु स्वभाव से शुद्ध होने पर भी जब से वह है, तभी से अर्थात् अनादिकाल से वह शरीर से बँधा हुआ है, क्योंकि उसकी भूल भी अनादि से है; इसलिए आत्मा अनादि से कर्म कालिमा से मलिन है। अशुद्ध निश्चयनय से पुण्य-पाप के भाव से मलिन है और असद्भूत व्यवहारनय से कर्म से आत्मा मलिन है ऐसा कहने में आता है।

जैसे खान के भीतर सुवर्ण मिट्टी से सहित रहता है; परन्तु वस्तुतः सोना मिट्टी से अत्यन्त भिन्न है इस कारण भट्टी में तपाने से शुद्ध सोना मिट्टी से अलग हो जाता है। उसीप्रकार वस्तुतः भगवान आत्मा शुद्ध है, अनन्त शक्तिमय है। जहाँ ऐसा माहात्म्य आता है और उपयोग अन्तर्मुख होता है, वहाँ मिथ्यात्व का नाश हो जाता है और राग-द्वेष का नाश हो जाता है। ऐसा स्वरूप होने पर भी अज्ञानी को उसकी खबर नहीं है।

श्रोता:- यह खबर पड़ने के बाद क्या करना? व्यवहार करना?

पूज्य गुरुदेवश्री:- यह खबर पड़ने पर उसमें स्थिरता करना है, अन्य कुछ करने का नहीं है। व्यवहार का विकल्प आयेगा, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है; आदर करने योग्य प्रयोजनवान नहीं है, करने के लिए

प्रयोजनवान नहीं है।

यह बात तो जिसको स्वभाव की जागृति में वीर्य काम करता है, उसको असर करनेवाली है। अपने बल बिना तो जैसे निर्बल पशु को रस्सी डालकर खड़ा करने पर भी उलटा पड़े और पछाड़ लगे, उसके जैसा होता है।

यहाँ तो अन्तिम भूमिका की बात ली है। अत: सम्यक् तप कहने पर भी शुक्लध्यान की अग्नि द्वारा जीवात्मा शुद्ध हो जाता है और कर्म कालिमा दूर हो जाती है ऐसा कहा है। परन्तु शुक्लध्यान की अग्नि से पहले धर्मध्यानरूपी अग्नि में पुण्य-पाप भिन्न पड़ जाते हैं। अभी वे सत्ता में रहते हैं; परन्तु ज्ञानी उनको 'मेरेपने' रूप से नहीं भोगता है। तत्पश्चात् स्वरूप में ध्यानावली लगाने पर अस्थिरता का भी नाश होकर अकेला शुद्ध आत्मा रह जाता है और कर्म कालिमा भिन्न हो जाती है।

जिसप्रकार जवेरी कालिमायुक्त सोने को पहिचानकर सोने की कीमत लेता-देता है, उसीप्रकार ज्ञानी अनित्य और मल से भरे हुए शरीर में पूर्णज्ञान और पूर्ण आनन्दमय परमात्मा का अनुभव करते हैं। पहले के जमाने में लाखवाले गहने होते थे, उनका तौल करने के लिए रसायन युक्त पानी में रखकर तौलते थे, जिससे सोने का वजन आता था, लाख का वजन नहीं आता था; उसीप्रकार ज्ञानी सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा को पहिचानते हैं, उसमें पुण्य-पाप होने पर भी उन्हें गिनती में नहीं लेते। ज्ञानी को पुण्य-पाप की महिमा नहीं आती, उन्हें तो मात्र चैतन्यस्वभाव की ही महिमा आती है।

ज्ञानी जानते हैं कि यह शरीर तो अनित्य और मल से भरा हुआ है, पुण्य-पाप के भाव भी अनित्य और मलिन हैं। ज्ञानी उनका अनुभव नहीं करते हैं। ज्ञानी तो शुद्ध चैतन्य का ही अनुभव करते हैं, व्यवहार का अनुभव नहीं करते हैं। ज्ञानी अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द से पूर्ण भरे हुए आत्मा का अनुभव करते हैं, शरीर अथवा राग का अनुभव नहीं करते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा आदि शुभक्रिया भी मेरी नहीं हैं, मुझे तो मेरे ध्यान में ज्ञानानन्द का अनुभवना वह मेरी क्रिया है- ऐसा ज्ञानी जानते हैं।

जिसको परमेश्वर के मार्ग में जाना हो, उसको सर्वप्रथम 'निर्णय' का दरवाजा खटखटाना पड़ेगा। 'आत्मा पूर्ण ज्ञानानन्द महाप्रभु है' –ऐसा पहले निर्णय में लेना पड़ेगा, फिर अनुभव होगा।

श्रोता:– स्व की उपलब्धि तो प्रसिद्ध है। निरंतर स्वयं तो है ही ?

पूज्य गुरुदेवश्री:– हाँ, आत्मा तो है; पर किसको ?कि जो उसका सेवन करे उसके लिए आत्मा है। ज्ञान की सेवा करे, उसके लिए आत्मा है। जो राग का सेवन करता है, उसको आत्मा का अनुभव नहीं है। ज्ञानस्वरूप आत्मा निरंतर होने पर भी जिसको उसकी दृष्टि नहीं है, जिसकी दशा नहीं बदली है, उसको एक समय मात्र भी आत्मा की उपलब्धि नहीं है। ज्ञान का अनुभव होवे अपनी दशा में आत्मा जैसा है, वैसा अनुभव में आवे– उसको आत्मा की उपलब्धि है। मात्र बातों से कोई आत्मा की उपलब्धि नहीं है।

यह 'प्रश्न नारद' (एक भाई) प्रश्न पूछने के लिए प्रख्यात है और पुराण में जो नारद आता है वह कुसंप (विवाद) कराने के लिए प्रख्यात है। रामचन्दजी के द्वारा सीताजी को वन में छोड़ देने के पश्चात् दो पुत्रों का जन्म हुआ। वे बड़े हुए, तब नारद ही उन्हें बताता है कि यह राम–लक्ष्मण तुम्हारे पिता और काका हैं। उन्होंने तुम्हारी माता को त्याग दिया था। यह सुनकर लव–कुश पिता के साथ युद्ध करने को तैयार होते हैं। युद्ध प्रारम्भ होता है और राम–लक्ष्मण के तीर व्यर्थ जाते हैं। तब उनको शंका होती है कि क्या कोई दूसरे बलभद्र और नारायण पैदा हुए हैं ?तब नारद लड़ाई बंद कराता है और पिता–पुत्रों का मिलन होता है। (नारद पर से यह प्रसंग याद आ गया।) जब लक्ष्मण की मृत्यु होती है और राम उसके शव को लेकर घूमते हैं उससमय लव–कुश को वैराग्य हो जाता है और वे पिता के समीप जाकर आज्ञा माँगते हैं कि पिताजी ! हमको आज्ञा दो ! हमारा अवतार आनन्दकंद में रमने के लिए है। अहा ! धन्य अवतार ! धन्य वह दशा !! यह मनुष्यभव आत्मा की जीत के लिए है। इसे अन्य किसी विषय में बरबाद करने योग्य नहीं है।

क्रमशः

गतांक से आगे

ज्ञानतत्त्व में पर का अकर्तृत्व

[समयसार - सर्वविशुद्ध अधिकार के प्रवचनों से]

आत्मा भूले तो क्या करे ? कि स्वयं अपने ज्ञान आनन्द का अनुभव छोड़कर विकार का अनुभव करता है और राग-द्वेष का कर्ता होता है; परंतु अपने भाव की भूमिका से बाहर तो वह कुछ नहीं करता। आत्मा राग-द्वेष करे और उसे कर्मबंध हो, वहाँ उस निमित्त-नैमित्तिक संबंध को देखकर उसमें अज्ञानी कर्ताकर्मपना मान लेता है। भाई, वस्तुस्वभाव का ऐसा नियम है कि एक का कार्य दूसरे में नहीं होता।

अरे, ऐसे वस्तुस्वभाव को जो नहीं जानते और पर में कर्तृत्व मानते हैं, वे जीव बेचारे पुरुषार्थ को हार गये हैं; निजस्वभाव के वेदन में उनका पुरुषार्थ नहीं चलता और परिणति बाह्य में ही फिरती रहती है। राग में भी एकमेक होना ज्ञान का स्वभाव नहीं है।—ऐसे स्वभाव को भूलकर तू अपने चैतन्य तेज को अज्ञान में कहाँ डुबोये दे रहा है ?

मिथ्यादृष्टि जीव को संबोधन करके आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं कि—अरे जीव! तू अपने आत्मा को अकर्ता देख! तेरा ज्ञान पर का कर्ता नहीं है—ऐसे ज्ञान को तू देख! अपना कर्तृत्व अपने भाव में देख, परंतु पर में न देख। चेतन का कर्तृत्व चेतन में होता है, जड़ में नहीं होता। चेतन जो कार्य हो, वह चेतन में ही होता है।

आत्मा में जो मिथ्यात्वादि भाव होते हैं, उनका कर्ता वह आत्मा ही है; पुद्गल का उसमें कुछ भी कर्तृत्व नहीं है। विकार में पचास प्रतिशत कर्तृत्व आत्मा का और पचास प्रतिशत कर्म का—ऐसे दो कर्ता नहीं हैं। यदि दोनों इकट्ठे होकर करें तो उसका फल भी दोनों भोगें; परंतु अचेतन कर्म को तो कहीं सुख-दुःख का उपभोग है नहीं।

तथा जीव, जिसप्रकार विकारभाव को करता है, उसीप्रकार यदि जड़कर्म को भी करे; तो चेतन का कार्य चेतन ही होता है—इस न्याय से, उस जड़ कर्म को चेतनता का प्रसंग आ जायेगा।

यहाँ अस्ति-नास्ति से युक्ति द्वारा आचार्यदेव ने आत्मा और जड़ के स्पष्ट

विभाग करके, परस्पर कर्ताकर्मपने का अत्यंत निषेध किया है। अज्ञानभाव की भी मर्यादा इतनी है कि वह अपने विकारभाव को करे, परंतु जड़ में तो कुछ भी नहीं कर सकता।

जीव निजस्वभाव से च्युत होकर पुद्गल कर्म के आश्रय से परिणमित होता है, तभी मिथ्यात्वादिभाव होते हैं और उन भावकर्मों का कर्ता जीव स्वयं है। तथा उससमय पुद्गलद्रव्य जीव के विकारी परिणाम का आश्रय करके (उसके निमित्त से) मिथ्यात्वादि कर्मरूप परिणमित होता है, वह अचेतन है, उसका कर्ता अचेतन है। जीव के भाव का कर्ता जीव, और अजीव के भाव का कर्ता अजीव है।

भाई, विकारभाव का संबंध आत्मा के साथ है; आत्मा के अस्तित्व में वह भाव होता है; इसलिये वह विकारभाव कोई दूसरा नहीं कराता परंतु तू ही अपने अपराध से उसका कर्ता है—ऐसा तू स्वीकार कर; और वह विकार तेरे स्वभावभूत नहीं है—ऐसा जानकर उसमें से एकत्वबुद्धि छोड़।

कर्म, आत्मा को विकार करायें—यह बात तो मूल में से उखेड़ दी है; आत्मा और जड़ की अत्यंत भिन्नता है, उनके कार्य की अत्यंत भिन्नता है—उसका जिसे निर्णय नहीं है, वह तो पर से विमुख होकर कब स्वभावोन्मुख होगा? फिर अपने में भी ज्ञानभाव तथा रागभाव दोनों का स्वरूप भिन्न-भिन्न है—इसका निर्णय तो अति सूक्ष्म है।

आचार्यदेव कहते हैं कि भाई, पर के साथ तू इतना अधिक संबंध मानता है कि पर मेरा हित-अहित करता है; परंतु परद्रव्य तो तुझे स्पर्श भी नहीं करता, वह तो तेरे स्वरूप से बाहर का बाहर ही रहता है। भाई, अपना उपयोग तू तत्त्वनिर्णय में लगा; परद्रव्य मुझे रोकता है—ऐसा मानकर यदि तू अटक जाता हो, तो ऐसी जिन की आज्ञा नहीं है। जिन-आज्ञा तो ऐसी है कि—तू अपने स्वभाव का पुरुषार्थ कर, वहाँ कर्म स्वयंमेव हट जायेगा। तेरे गुण-दोष का उत्पादक दूसरा कोई नहीं। अज्ञानभाव से तू अपने दोष का कर्ता है, और ज्ञानभाव से उस विकार का कर्तृत्व दूर हो जाता है, इसलिये ज्ञानभाव से आत्मा का विकार अकर्ता है; पर के कर्तृत्व की तो बात ही नहीं है। *क्रमशः साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -22, अंक-3*

मंगल-प्रवचन

परमात्मप्रकाश और समयसार

आज मंगल सुप्रभात है। यहाँ मंगलाचरण के रूप में परमात्मप्रकाश में पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार चल रहा है। जगत में पंच परमेष्ठी महान मंगल हैं और उन्हें पहिचानकर नमस्कार करने से आत्मा के भाव में पवित्रता होती है, वह भी मंगल है। आत्मा की पहिचान और श्रद्धा करना, वह महान मंगल है, उसके फल में केवलज्ञान से जगमगाता हुआ पूर्ण सुप्रभात उदित होता है और उसके साधकरूप से सम्यक्त्वादि प्रगट हुए, वह मंगल सुप्रभात है।

पंचपरमेष्ठी के आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद की ऊर्मियाँ उछलती हैं, चैतन्यस्वरूप में मग्न होकर अतीन्द्रिय आनंद का वेदन करते हैं। यह आत्मा ऐसे ही आनंद का धाम है। अहा! वीतराग मार्ग के संत, सिंह समान होते हैं... जगत की जिन्हें चिंता नहीं है, जो चैतन्य सूर्य के तेज से तपते हुए आत्मा में शुद्धोपयोग द्वारा विचरते हैं—वर्तते हैं—लीन होते हैं और जगत के जीवों को उसका उपदेश देते हैं, ऐसे वीतरागमार्गी संत, केवलज्ञान के साधक हैं। अहा! केवलज्ञान होने से अनंत चक्षु खुल जाते हैं। ढाई द्वीप में करोड़ों मुनि विराजमान हैं, लाखों केवली-अरिहंत भगवान एवं लोकाग्र में अनंत सिद्ध विराजते हैं—उनका स्वरूप लक्ष में लेने से ज्ञान निर्मल होता है। उनके जैसा शुद्ध आत्मा ही मुझे उपादेय है, अपना शुद्धात्मा ही मुझे उपादेय है और उससे विरुद्ध सब कुछ हेय है। मेरा असंख्य प्रदेशी चैतन्य शरीर सदा निरोग-राग के रोग रहित है। जगत के छह द्रव्यों में आत्मा सबसे महान महिमावंत है, आत्मा में भी पंच परमेष्ठी उपादेय हैं, उनमें भी सिद्ध भगवंत संपूर्ण शुद्ध हैं। और उन सिद्ध भगवान जैसा इस आत्मा का जो त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव है, वह निश्चय से परम उपादेय है। ऐसे आत्मा को उपादेयरूप से लक्ष में लेकर पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया है। ऐसा शुद्धात्मा

ही उपादेय है, ऐसा उपदेश संत देते हैं कि—अरे जीवो! शुद्धात्मा को ही उपादेय करके हम परमात्मपद को साधते हैं और तुम्हें भी यही परमतत्त्व उपादेय है, इससे भिन्न कुछ उपादेय नहीं है। शुद्धात्मा के श्रद्धा-ज्ञान-आनंदरूप जो आटा, घी और गुड़ उससे बना हुआ चैतन्य-कसार, वह अतीन्द्रिय स्वाद से भरपूर है। देखो, यह नूतन वर्ष की मिठाई। 'जिसने ऐसी मिठाई खायी, उसने भव की भूख भगायी।' भाई, ऐसे आत्मा को श्रद्धा में-अनुभव में लेकर आत्मा में ऐसा प्रभात उदित कर कि जिस मंगल प्रभात का कभी अस्त न हो... केवलज्ञानरूप ऐसा अप्रतिहत प्रभात उदित हो कि जो सादि-अनंत आनंद में स्थिर रहे। आत्मा में अपूर्व मंगल वर्ष का प्रारंभ हुआ... मंगल प्रभात उदित हुआ।

धर्मी जीव जानता है कि जो मेरे स्वरूप का अस्तित्व है, उसमें कर्म की 148 प्रकृतियों में से एक भी प्रकृति है ही नहीं; और उस प्रकृति के फलरूप जो परभाव हैं, वे भी मेरे स्वभाव में नहीं हैं। मेरे स्वभाव का फल तो पूर्ण ज्ञान और आनंदरूप है; उसमें कर्म का फल नहीं है, दुःख नहीं है, अपूर्णता नहीं है।

देखो भाई! वह दीपावली—नूतन वर्ष की भेंट दी जा रही है। अहा, तेरा आत्मवैभव अचिंत्य निधान से भरपूर है, उस निधान को खोलकर संत तुझे बतलाते हैं कि देख यह अपना निधान!! अहा, चैतन्य के अनुभव की क्या बात करें?—कि जिस पद की पूरी महिमा जैसी ज्ञान में भासित हुई, वैसी वाणी में पूरी नहीं आ सकती। ऐसी तेरे स्वभाव की अचिंत्य महिमा है, वह महिमा जिसे भासित हो, उसके आत्मा में ज्ञानदीपक प्रज्वलित हो उठता है। प्रभो! पुण्य और संयोग के पीछे दौड़ने से तेरे चैतन्य का माहात्म्य लुटता है। अपने चैतन्य की महत्ता को चूककर पर की महत्ता करने में तू कहाँ रुका है? पर की महत्ता कर-करके और स्वभाव की महत्ता भूल-भूलकर तू संसार में भटक रहा है परंतु जहाँ स्वभाव का माहात्म्य लक्ष में

लेकर उसके अनुभव में स्थिर हुआ, वहाँ धर्मी के उस अनुभव में समस्त कर्मों का और उनके फल का अभाव है; धर्मी उस कर्म फल को नहीं भोगता, वह तो चैतन्य के आनंद का ही उपभोग करता है। भगवान महावीर जिस मार्ग से मोक्ष पधारे, उस मार्ग पर प्रयाण करने का पहला कदम यह है कि ऐसे स्वभाव की महिमा लाकर उसमें अंतर्मुख होना। अहो, अंतर में दृष्टि करके जिन्होंने निज-निधान को देखा है, वे सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा शुद्धात्मप्रतीति के बलपूर्वक कहते हैं कि परभावों का उपभोग वास्तव में हमारे स्वरूप में नहीं है; हमारा स्वरूप तो आनंद का ही उपभोग देनेवाला है। देखो, यह नूतनवर्ष में आत्मानंद के उपभोग की बात!

चक्रवर्ती या तीर्थंकर के लोकोत्तर पुण्य की तो क्या बात करें?—परंतु वह चैतन्य के विभाव के फल से बँधा हुआ पुण्य है, उसका उपभोग ज्ञानी को नहीं है। ज्ञानी तो ऐसा वेदन करते हैं कि—मैं ही अपने आनंद का भोक्ता हूँ... चैतन्य के स्वभाव से बाह्य किसी भाव का उपभोग मैं नहीं करता। चैतन्य साधना की भूमिका कैसी होती है और उस भूमिका का पुण्य कैसा होता है, वह बात साधारण जनता के ध्यान में आना कठिन है... साधक को एक विकल्प से जो पुण्य बंधता है, वह जगत को आश्चर्यचकित कर देता है, तो फिर साधकभाव की महिमा की क्या बात!! जगत को आश्चर्यचकित कर देनेवाले उस पुण्य के उपभोग की रुचि धर्मात्मा के रोम में भी नहीं है। यह तो वीतराग का मार्ग है, वीर का मार्ग है।

हरि का (प्रभु का) मारग है शूरों का....
नहिं कायर का काम....

पापसमूह को हरनेवाले ऐसे वीतराग भगवान का यह वीरमार्ग, वह शूरवीरों का मार्ग है, उसमें कायर का काम नहीं है, अर्थात् राग की वृत्ति में जिसे मिठास लगती है—ऐसा कायर जीव वीतरागता के वीरमार्ग को नहीं साध सकता। जिस चैतन्य में राग का एक अंश भी नहीं है, ऐसे चैतन्य को

साधना, वह तो शूरवीर का काम है। हरि का मार्ग अर्थात् चैतन्य की पवित्रता का मार्ग, वह पुण्य से तो कहीं दूर है, उसमें राग का प्रवेश नहीं है, राग का या पुण्य फल का उपभोग उसमें नहीं है। अहा, ऐसे वीतराग मार्ग की साधना करना, वह तो वीर का काम है। राग के रस में रुक जाये—वह वीर का काम नहीं है, यह तो कायर का काम है। वीर का काम तो यह है कि राग से पार होकर चिदानंदस्वभाव को अनुभव में ले और मोक्षमार्ग को साधे। राग के बंधन में बँधा रहे, उसे वीर कैसे कहा जायेगा? वीर तो उसे कहा जाता है कि जो राग के बंधन तोड़ डाले।

साधक का एक विकल्प—जिससे तीर्थंकर नामकर्म जैसे जगत के आश्चर्यकारी पुण्य बँधते हैं, तो उस विकल्प में रहे हुए पवित्र साधकभाव की महिमा की तो बात ही क्या? इसप्रकार पवित्रता और पुण्य दोनों की संधि होने पर भी पवित्रता का उपभोग धर्मी के अंतर में होता है और पुण्य का उपभोग धर्मी के अंतर से बाह्य है, उसका उपभोग धर्मी के अनुभव में नहीं है। वाह! देखो यह नूतनवर्ष की अपूर्व बात!! अहा, साधक भाव... जिसके एक अंश की भी ऐसी अचिंत्य महिमा है कि तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य भी जिसकी बराबरी नहीं कर सकता। तीर्थंकर प्रकृति तो साधक को पवित्रता के अंश में रहे हुए विकल्परूप विभाव का फल है, जबकि साधकभाव, वह स्वभाव का फल है;—दोनों की जाति ही भिन्न है।

धर्मी को चैतन्य की जो महिमा जागृत हुई है, उसे राग लूट नहीं सकता। चैतन्य की महिमा जागृत हुई, वह बढ़कर केवलज्ञानरूपी पूर्ण सुप्रभात उदित होगा। वह मंगल है। चैतन्य -स्वभाव जगत में सर्वोत्कृष्ट मंगलरूप पदार्थ है, उसकी महिमा की और उसकी सन्मुखता का भाव जागृत होना भी अपूर्व मंगल है। ऐसा मंगल प्रभात आत्मा में प्रगट हुआ, वह सच्चा मंगल नूतनवर्ष है।

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -22, अंक-7

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

4-9. प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व - इसमें व्रत, नियम, प्रतिक्रमण, तप, आराधना आदि तथा मुनित्व में कारण द्रव्यों के त्याग आदि का विवेचन है। इसके 30 वस्तुगत, 600 प्राभृत, पद संख्या 84,00,000 है।

4-10. विद्यानुवाद पूर्व - इसमें समस्त विद्याएँ आठ महानिमित्त, रज्जुराशिविधि, क्षेत्र श्रेणी, लोक प्रतिष्ठा, समुद्घात आदि का विवेचन है। इसके वस्तुगत 15, प्राभृत 300, पद संख्या 1,10,00,000 है।

4-11. कल्याणवाद पूर्व - इसमें सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारागणों के चार क्षेत्र, उपपादस्थान, गति, वक्रगति तथा उनके फलों का, पक्षी के शब्दों का और अरिहंत अर्थात् तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदि के गर्भावतार आदि महाकल्याणकों का वर्णन है। इसके वस्तुगत 10, प्राभृत 200, पदसंख्या 26,00,00,000 है।

4-12. प्राणावाय पूर्व - इसमें शरीर चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म, जांगुलिक प्रक्रम (विष विद्या) और प्राणायाम के भेद-प्रभेदों का विस्तार से वर्णन है। इसके वस्तुगत 10, प्राभृत 200, पद संख्या 13,00,00,000 है।

4-13. क्रिया विशाल - इसमें लेखन कला आदि बहत्तर कलाओं, स्त्री सम्बन्धी चौसठ गुणों, शिल्पकला, काव्य सम्बन्धी गुण-दोष, विधि और छन्द निर्माण कला आदि का विवेचन है। इसके वस्तुगत 10, प्राभृत 200, पद संख्या 9,00,00,000 है।

4-14. लोक बिन्दुसार - इसमें आठ व्यवहार, चार बीज, मोक्ष ले जानेवाली क्रिया और मोक्षसुख, अंकराशि, परिकर्म आदि गणित तथा समस्त श्रुत सम्पत्ति का वर्णन है। इसके वस्तुगत 10, प्राभृत 200, पद संख्या 12,50,00,000 है। (धवला पुस्तक-1, पृष्ठ 115-123)

5. चूलिका - चूलिका के पाँच भेद हैं- जलगता, स्थलगता, आकाशगता, रूपगता, और मायागता। (धवला पुस्तक, पृष्ठ 114)

5-1. जलगता चूलिका - इसमें जल में गमन, जलस्तम्भन के कारणभूत मंत्र-तंत्र और तपश्चर्या रूप अतिशय आदि का वर्णन है। इसकी पद संख्या दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ (2,09,89,200) है।

5-2. स्थलगता चूलिका - इसमें पृथिवी के भीतर गमन करने के कारणभूत मंत्र-तंत्र और तपश्चरण रूप आश्चर्य आदि का तथा वास्तु विद्या और भूमि संबंधी दूसरे शुभ-अशुभ कारणों का वर्णन है। इसकी पद संख्या दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ (2,09,89,200) है।

5-3. मायागता चूलिका - इसमें इन्द्रजाल आदि के कारणभूत मंत्र स्वरूप के आकार रूप से परिणमन करने के कारणभूत तंत्र-मंत्र और तपश्चरण तथा चित्र-काष्ठ-लेप्य-लेखन आदि कर्मों के लक्षण का वर्णन करती है। इसकी पद संख्या दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ (2,09,89,200) है।

5-4. आकाशगता चूलिका - इसमें आकाश में गमन करने के कारणभूत मंत्र-तंत्र और तपश्चरण का वर्णन है। इसकी पद संख्या दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ (2,09,89,200) है।

इस प्रकार इन पाँचों ही चूलिकाओं के पदों का जोड़ दस करोड़ उनचास लाख छियालीस हजार (10,49,46,000) पद है।

इस प्रकार बारह अंगों के कुल पदों का जोड़ 1,12,83,58,005 होता है। यह संख्या मात्र अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान के भेदों की है।

अब यहाँ द्रव्यश्रुत के दूसरे भेद **अंगबाह्य** के चौदह भेदों का वर्णन करते हैं—

1. सामायिक, 2. चतुर्विंशति स्तव, 3. वंदना, 4. प्रतिक्रमण, 5. वैनयिक, 6. कृतिकर्म, 7. दश वैकालिक, 8. उत्तराध्ययन, 9. कल्प

व्यवहार, 10. कल्प्याकल्प्य, 11. महाकल्प्य, 12. पुण्डरीक, 13. महापुण्डरीक, 14. निषिद्धिका। (धवला पुस्तक-1, पृष्ठ 97)

1. **सामायिक नामक अर्थाधिकार** नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव संबंधी छह भेदों द्वारा समता भाव के विधान का वर्णन करता है।

2. **चतुर्विंशतिस्तव नामक अर्थाधिकार** उस उस काल संबंधी चौबीस तीर्थंकरों की वंदना करने की विधि, उनके नाम, संस्थान, उत्सेध, पाँच महाकल्याणक, चौंतीस अतिशय के स्वरूप और तीर्थंकरों को वंदना की सफलता का वर्णन करता है। *क्रमशः*

साभार : स्वाध्याय का स्वरूप

मई माह के मुख्य तिथि-पर्व

1 मई - वैशाख शुक्ल एकम्
भगवान कुन्थुनाथ जन्म-तप-निर्वाण कल्याणक

2 मई - वैशाख शुक्ल द्वितीय
उपकार दिवस - पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

3 मई - वैशाख शुक्ल तृतीय
अक्षय तृतीया

7 मई - वैशाख शुक्ल षष्ठी
भगवान अभिनन्दननाथ गर्भ-मोक्षकल्याणक

9 मई - वैशाख शुक्ल **अष्टमी**

10 मई - वैशाख शुक्ल नवमीं
भगवान सुमतिनाथ तप कल्याणक

11 मई - वैशाख शुक्ल दसवीं
भगवान महावीर ज्ञान कल्याणक

15 मई - वैशाख शुक्ल **चतुर्दशी**

21 मई - ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी
भगवान श्रेयांसनाथ गर्भ कल्याणक

23 मई - ज्येष्ठ कृष्ण **अष्टमी**

25 मई - ज्येष्ठ कृष्ण दसवीं
भगवान विमलनाथ गर्भ कल्याणक

27 मई - ज्येष्ठ कृष्ण बारस
भगवान अनन्तनाथ जन्म-तप-निर्वाण कल्याणक

29 मई - ज्येष्ठ कृष्ण **चतुर्दशी**
भगवान शान्तिनाथ जन्म-तप-निर्वाण कल्याणक

30 मई - ज्येष्ठ कृष्ण पूर्णिमा
भगवान अजितनाथ गर्भ कल्याणक

षट्खण्डागम ग्रन्थ की पंचम पुस्तक की वाचना सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार कीर्तिमान रचते हुए प्रथम श्रुतस्कन्ध '**षट्खण्डागम धवला टीका सहित**' वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ है। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाचना का समापन 31 मार्च 2021 को; द्वितीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 01 अप्रेल से, समापन 08 जुलाई 2021 को; तृतीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 09 जुलाई 2021 तथा समापन 24 अक्टूबर 2021 को और चतुर्थ पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 25 अक्टूबर 2021 से 27 फरवरी 2022 को और पंचम पुस्तक की वांचना का 28 फरवरी 2022 से 24 अप्रेल 2022 तक भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई।

विद्वान बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर तथा सहयोगी बहिनों एवं मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त हुआ।

सम्पूर्ण 16 पुस्तकों की वाचना निरन्तर तीर्थधाम मंगलायतन से प्रवाहित होती रहे, ऐसी भावना आदरणीय पवनजी जैन की थी। जिसमें क्रमशः...

छठवीं पुस्तक की वाचना 25 अप्रेल 2022 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होगा।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)		**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - mang4321 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

सत्पात्रोपगतं दानं सुक्षेत्रे गतबीजवत्।
फलाय यदपि स्वल्पं तद्कल्पाय कल्पते॥

अर्थात् सत्पात्र में गया हुआ दान अच्छे स्थान में बोये हुए बीज के समान सफल होता है।

संयम प्रकाश, उत्तरार्ध तृतीय किरण, पृष्ठ 521

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

महावीर जन्म कल्याणक सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : भगवान महावीर के जन्म कल्याणक के अवसर पर दिनांक 14 अप्रेल 2022, चैत्र शुक्ल तेरस की तीर्थधाम मङ्गलायतन में भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों के द्वारा अत्यन्त हर्षोलास के साथ महावीर भगवान के जन्म कल्याणक का आयोजन किया गया। जिसमें प्रात: 06.45 से भगवान महावीर का प्रक्षाल पूजन, प्रभातफेरी, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी प्रवचन, तत्पश्चात् पण्डित सचिन जैन के द्वारा 'वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता' विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। दोपहर में बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन द्वारा धवला वाँचना, 03 से 04 बजे तक एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का परिवर्तन दिवस का वीडियो समस्त देश भर की मुमुक्षु संस्थाओं के छात्र-छात्राओं के साथ मंगलार्थी छात्रों ने भी ऑनलाईन लाभ प्राप्त किया।

सायंकालीन कार्यक्रम में महावीर जिनालय में जिनेन्द्र भक्ति, जन्मकल्याणक की बधाई आदि भक्तिगीतों के माध्यम से भक्ति का कार्यक्रम हुआ और सांस्कृतिक कार्यक्रम की शृंखला में बाल मङ्गलार्थियों द्वारा '**वीर नाम मंगलकार**' और मङ्गलार्थी छात्रों के द्वारा '**वीर के पथ पर**' सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में बाहर से पधारे श्री महावीरप्रसादजी बिजौलिया, श्री दीपेश जैन बड़वानी एवं तीर्थधाम मंगलायतन परिवार एवं पावना परिवार उपस्थित था।

मथुरा चौरासी यात्रा सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के सभी छात्रों एवं परिवारीजनों के साथ मङ्गलायतन विश्वविद्यालय स्थित महावीर जिनालय के दर्शनपूर्वक, मथुरा चौरासी स्थित अन्तिम अनुबद्धकेवली भगवान जम्बूस्वामी के दर्शन, भक्ति, परिचय, मथुरा नगर का ऐतिहासिक परिचय, मथुरा चौरासी मन्दिर का परिचय, श्रमण भारती संस्थान के निर्देशक डॉ. जिनेन्द्र शास्त्री के द्वारा दिया गया। सभी मंगलार्थी छात्रों ने जिनालय में भक्ति-पाठ किया, इसी अवसर पर विद्यानिकेतन के प्राचार्य ने भी 'अहो भाव' का परिचय देते हुए डॉ. जिनेन्द्र शास्त्री को 'अहो भाव' भेंट किया।

पूज्य गुरुदेवश्री के उपकार दिवस पर
सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के उपकार दिवस 02 मई 2022 को उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रात: पूजन के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का मांगलिक सी.डी. प्रवचन समयसार गाथा 38 पर हुआ, तत्पश्चात् डॉ. सचिन्द्र शास्त्री द्वारा गुरुदेव के उपकार बताते हुए स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

सायंकालीन कार्यक्रम में जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् 'मिलिये पूज्य गुरुदेवश्री से' कार्यक्रम जिसकी अध्यक्षता पण्डित सुधीर शास्त्री ने की। मुख्य अतिथि के रूप में प्राचार्य पण्डित शुभम शास्त्री, ज्ञानोदय, भोपाल; डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये। मंगलार्थी समकित जैन ने पूज्य गुरुदेवश्री के उपकारों का वर्णन अपने वक्तव्य में किया। इसका संचालन मंगलार्थी अक्षत जैन, भिण्ड तथा मंगलाचरण मंगलार्थी अर्चित ने किया।

अक्षय तृतीया पर्व सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा अक्षय तृतीया पर्व के अवसर पर उत्साह के साथ भगवान आदिनाथ जिनेन्द्र पूजन, प्रक्षाल, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, तत्पश्चात् अक्षय तृतीया पर्व की पूजन की जयमाला पर स्वाध्याय, दोपहर में धवला वाचना बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन द्वारा, सायंकालीन जिनेन्द्र भक्ति, तत्पश्चात् अक्षय तृतीया पर्व पर समयसार कण्ठपाठ का कार्यक्रम किया गया। जिसकी अध्यक्षता बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन ने की और निर्णायक पण्डित संजय शास्त्री सर्वोदय, डॉ. प्रमोद शास्त्री, जयपुर, पण्डित ऋषभ शास्त्री दिल्ली थे। जिसका संचालन आत्मार्थी कन्या आयुषी जैन दिल्ली द्वारा किया गया। जिसमें मंगलायतन के बाल मंगलार्थी और आदिनाथ विद्यानिकेतन के मंगलार्थियों और देश भर के ऑनलाईन जुड़नेवाले बाल-युवा-वृद्ध श्रोताओं ने भी कण्ठपाठ प्रतियोगिता का लाभ लिया।

इसी अवसर पर आदरणीय बहिनजी द्वारा अक्षय तृतीया पर्व पर विशेष स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

वैराग्य समाचार

अलवर : आदरणीय विद्वत् गौरव **पण्डित किशनचन्दजी भाईसाहब** के 21 अप्रेल 2022 को देह-परिवर्तन से हम सभी को अत्यन्त आघात लगा। तीर्थधाम मङ्गलायतन के प्रति विशेष स्नेह था। तीर्थधाम मङ्गलायतन की प्रतिष्ठा 2003 में हुई, तभी से आप समर्पण भाव से जुड़े हुए थे।

सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज में करणानुयोग की गहन विद्वतता और अपनी विशिष्ट शिक्षण शैली से पहिचान बनानेवाले आप मुमुक्षु समाज के अद्वितीय रत्न थे। आपका जीवन सरल स्वभावी, धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत था। उनके वियोग से हमने एक सच्चा आत्मार्थी खोया है, जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं है। इस परिस्थिति में सदैव हम आपके साथ हैं।

भोपाल : मुमुक्षु जगत के लोकप्रिय विद्वान्, प्रभावक, जिनवाणी सपूत, सरल एवं सारगर्भित शैली के धनी **पण्डित श्री कपूरचन्दजी कौशल** का 22 अप्रेल 2022 को देह-परिवर्तन हो गया। आप भोपाल मुमुक्षु समाज की रीढ़ थे। अत्यन्त रोचक तरीके से विषय का प्रतिपादन करके सम्पूर्ण सभा को बाँधे रखनेवाले विद्वान सदैव हमारी स्मृति में बने रहेंगे।

अन्त में दोनों ही विद्वान् निज पुरुषार्थ के बल से पूर्णत्व को शीघ्र प्राप्त हों ऐसी मंगल भावना तीर्थधाम मंगलायतन भाता है।

इन्दौर : श्री अनिलजी पाटौदी का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन से विशेष लगाव था। आप पण्डित अशोकजी लुहाड़िया के साले थे।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की सदस्यता स्वीकार करता हूँ और मैं ..... राशि जमा करवाऊँगा / दूँगा।

हस्ताक्षर

- चौथाई ग्रास दान भी अनुकरणीय -

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव,
तस्यापि सन्ततमणुव्रतिना यथर्द्धिः।
इच्छानुसाररूपमिह कस्य कदात्र लोके,
द्रव्यं भविष्यति सदुत्तमदानहेतुः॥

अर्थात् गृहस्थियों को अपने धन के अनुसार एक ग्रास अथवा आधा ग्रास अथवा चौथाई ग्रास अवश्य ही दान देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जब मैं लखपति या करोड़पति हो जाऊँगा, तब दान दूँगा; बल्कि जितना धन हमारे पास है, उसी के अनुसार थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिए। - आचार्य पद्मनन्दि : पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, श्लोक 230

यह राशि आप निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

चिदायतन सहयोग

-	परम शिरोमणी संरक्षक	रुपये 11.00 लाख
-	शिरोमणी संरक्षक	रुपये 05.00 लाख
-	परम संरक्षक	रुपये 02.00 लाख 51.00 हजार
-	संरक्षक	रुपये 01.00 लाख

तीर्थधाम चिदायतन संकुल में 206096.26 वर्ग फीट का निर्माण प्रस्तावित है। देव-शास्त्र-गुरु की उत्कृष्ट धर्मप्रभावना हेतु निर्मित हो रहे इस संकुल के निर्माण में आप एवं आपका परिवार, रुपये 2100.00 प्रति वर्ग फीट की सहयोग राशि प्रदान कर, तीर्थ निर्माण के सर्वोत्कृष्ट कार्य में सहभागी हो सकते हैं।

दानराशि में आयकर की छूट

भारत सरकार ने, श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट को दान में दी जानेवाली प्रत्येक राशि पर, आयकर अधिनियम वर्ष 1961, 12-ए के अन्तर्गत धारा 80 जी द्वारा छूट प्रदान की गयी है।

नोट - आप अपनी राशि सीधे बैंक में जमा करा सकते हैं, अथवा निम्न नाम से Cheq./Draft भेज सकते हैं।

NAME	:	SHRI SHANTINATH AKAMPAN KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	PARIYAVALI, ALIGARH
A/C. NO.	:	7969002100000194
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0796900

सारा जगत जब पुण्य में
ही मोक्ष मार्ग तलाशता।
तब उदित होकर आपने
मुझको दिया मेरा पता।।

पतझड़ हुए सब कुपथ,सुपथ
बसंत कुसुम खिला दिया।
पहचान पत्र मिला मुझे
चैतन्य उदक पिला दिया।।

है कोटि कोटि उपकार, भरम दयो टार,
पलट सरकार, और क्या कहना,
मिल गया मुझे मेरा ये चेतन गहना।।

उपकार ऐसा है कि जो
शब्दों में गुँथ सकता नहीं।
गुरुदेव जैसा जीव इस
धरती पे मिल सकता नही।

हम करें स्व पर प्रभावना
तब ही सफल उपकार है।
वरना कृतघ्नी की तरह
भ्रमना,– हमारी हार है।

(दोहा)
गुरूदेव ने बता दिया, मुक्ति महल का राज़।
सर्व जीव इस लोक के, पाएँ 'समकित'आज।।

समकित जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष)

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

1. एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय, क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण, पर्याय होती ही है; करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य, वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं, और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com